राष्ट्रकवि मैथिली शरण गुप्त का समन्वयवादी दृष्टिकोण

❑ डॉ० सत्यपाल श्रीवत्स

हिन्दी साहित्य के समालोचकों ने मैथिली शरण गुप्त को समन्वयवादी कवि माना है। वस्तुतः यह है भी सत्य क्योंकि उनकी कृतियों में हम अतीत और वर्तमान का अद्‌भुत समन्वय देखते हैं। इस विषय में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जी के ये शब्द विचारणीय हैं– ''प्राचीन के प्रति पूज्यभाव और नवीन के प्रति उत्साह दोनों इनमें हैं''।[1]

डॉ० नगेन्द्र का कथन है कि गुप्त जी की रचनाओं में प्राचीन आस्थाओं और जीवन मूल्यों के प्रति अटूट विश्वास और नवीन युग की सामाजिक बुराईयों के प्रति विद्रोही स्वर समन्वित होकर मणिकाञ्चन संयोग के समान प्रतिष्ठित हुए हैं।[2] भारत-भारती तथा राजा-प्रजा की निम्न पंक्तियां उनका समन्यवादी दृष्टिकोण स्पष्ट करने में पर्याप्त सशक्त है :-

विद्या, कला, कौशल में सबका अटल अनुराग हो,
उद्योग का उन्माद हो, आलस्य-अघ का त्याग हो।
सुख और दुख में एक - सा सब भाइयों का भाग हो,
अंतःकरण में गूंजता राष्ट्रीयता का राग हो।[3]

तथा ''प्रेम करे तो करे स्वार्थ कर सके न अन्धा,
लगे गले से गला और कन्धे से कन्धा।
मिले पैर से पैर, न सिर से सिर टकरावें
तो सबने भी स्वयं समरू होकर चकरावें''।[4]

''भारत-भारती'' से लेकर ''विष्णुप्रिया'' तक कवि गुप्त ने जिस विशाल साहित्य की रचना की है उसमें हम सर्वत्र कवि का समन्वयवादी दृष्टिकोण ही अनुस्यूत हुआ देखते हैं। उन्होंने सन् 1901 में लिखना आरम्भ किया था, जब हमारा देश परतन्त्रता की बेड़ियों में जकड़ा हुआ था, यद्यपि उस समय स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए भारतीय जनमानस में एक प्रबल चेतना उभरने लग

1. *हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० - 230*
2. *साकेत एक अध्ययन, पृ० - 262*
3. *भारत-भारती, पृ० - 160-180*
4. *राजा-प्रजा, पृ० - 40*

पड़ी थी। उनकी अंतिम कृति ''विष्णु-प्रिया'' सन् 1957 में प्रकाशित हुई थी जब हमारे देश को स्वतन्त्रता मिले अभी दस वर्ष ही व्यतीत हुए थे। छप्पन वर्ष की इस लम्बी रचनावधि में कवि गुप्त न तो किसी वाद के झमेले में पड़े और न ही किन्हीं तजर्वों के चक्कर में। उनके सामने सदा एक ही दृष्टिकोण रहा–सच्ची और सीधी राष्ट्रीयता । उन्होंने प्राचीन तथा नवीन मूल्यों को पहचानते हुए राष्ट्र की वर्तमान समस्याओं के बारे में अपना दृष्टिकोण जागरूक रक्खा।

सन् 1901 से 1925 तक की अवधि कवि के काव्याभ्यास का समय माना गया है। इसी अवधि में भारत में हिन्दुराष्ट्रवाद, पुनरूत्थानवाद एवं राष्ट्रीय भावना बड़ी तेजी से उभर कर सामने आ रही थी, जिसका प्रभाव कवि गुप्त पर पड़ा, जिससे उनके समन्वयवादी विचार पनपने लगे। उन्होंने इन सबसे प्रेरणा लेकर अपनी कृतियों में इतिहास, पुराण और वर्तमान का समन्वय किया।[1]

गुप्त जी की राष्ट्रीय भावना की पृष्ठभूमि में भी अपने गौरवशाली अतीत के प्रति पूर्ण आस्था और भारतीय परिस्थितियों के अनुरूप नवीन मान्यताओं की उपादेयता के प्रति स्वागत का समन्वय - भाव है। वस्तुतः उन्होंने समन्वयवादी दृष्टिकोण कालिदास जैसे महान् कवियों, विवेकानन्द, कबीर, तुलसी, गुरूनानक जैसे विचारकों तथा दादू दयाल, मलूकदास, रैदास जैसे सन्त कवियों तथा गीता जैसे धार्मिक एवं दार्शनिक ग्रथों से विरासत में लिया था, जिससे उनकी लगभग सम्पूर्ण रचना-धर्मिता पर गहरी छाप बैठ गई। हम देखते हैं कि कवि गुप्त अपनी इस समन्वयवादी भावना के मार्ग पर दृढ़ता और पूरी निष्ठा के साथ उत्तरोत्तर आगे बढ़ते गए। इसमें उन्होंने कहीं भी बदलाव या ठहराव नहीं आने दिया। गुप्त जी की भारत-भारती का यह पद उनकी समन्वयवादी भाव-भूमि के लिए मानो आधारशिला का काम करता है :-

''हम कौन थे क्या हो गए हैं, और क्या होंगे अभी?
आओ विचारें आज मिलकर समस्याएं सभी॥''

समालोचक यद्यपि इस पद को राष्ट्रीय भावना के संदर्भ में लेते हैं, परन्तु इसमें निहित समन्वयवादी भावना को भी नकारा नहीं जा सकता। भारत-भारती से विष्णुप्रिया तक की सत्तावन वर्षों की लम्बी रचनावधि में उनका व्यक्तित्व यद्यपि अनेक अनुभूतियों से गुजरा, जिनसे उस में कुछ न कुछ परिवर्तन की पर्याप्त सम्भावना हो सकती थी, परन्तु उनके व्यक्तित्व में कोई अन्तवर्ती सुदृढ़ तत्त्व अवश्य निहित था जिसके कारण उनके समन्वयवादी दृष्टिकोण में एक प्रकार का ठहराव बना रहा। उसमें उन्होंने कभी न्यूनता नहीं आने दी। सचमुच कितना सन्तुलित था उनका समन्वयवादी कवि-हृदय। यह तो सर्वविदित है कि गुप्त जी ने अपने विरहिणी पात्रों का चयन अधिकांशतः अतीत कालीन ऐतिहासिक स्रोतों से ही लिया है, परन्तु

1. *देखिए मैथिलीशरण गुप्त - ''व्यक्ति और कृतित्व'' कमलाकांत पाठक, पृ०-139*

क्योंकि उनका चरित्रांकन तो उन्होंने अपने युग के परिवेश के प्ररिप्रेक्ष्य में ही किया है, अत: इस विषय में भी उन्होंने अपनी समन्वयवादी आस्था का ही परिचय दिया है।

गुप्त जी के विरह-वर्णन के कई स्थलों पर भी उनके समन्वयवादी दृष्टिकोण के ही दर्शन होते हैं। उनके विरह-वर्णन में सबसे बड़ी विशेषता है मर्यादा एवं संयम का पालन। वह यदि संस्कृत कवियों द्वारा प्रचलित की हुई और अपने पूर्ववर्ती हिन्दी कवियों द्वारा समर्पित विरह-वर्णन शैली की परम्परा को निभाते हुए उसमें विरह-जन्य ताप एवं असह्य वेदना के ऊहात्मक वर्णन, विरहावस्था में तन्मयंता की स्थिति तथा प्राकृतिक उपादानों के प्रति वितृष्णा, षड् ऋतु वर्णन आदि को सह रूप में स्वीकार करते हुए चलते हैं तो वे आधुनिक युग की विरहणियों की कर्त्तव्य परायणता, सहनशीलता, चुनौतियों को स्वीकार करने की क्षमता, व्यक्तिगत इच्छाओं और सुखों का त्याग सेवा परायणता आदि विशेषताओं का उनके साथ समन्वय करना भी नहीं भूलते हैं। इन्हीं समन्वयवादी गुणों के कारण गुप्त जी के नारी पात्र विशेषतया उर्मिला, यशोधरा और विष्णु प्रिया के चरित्र हमारे सामने विशेष आदर्श लेकर उभरते हैं। उनके विरही नारी पात्रों के उदात्त व्यक्तित्व असहाय एवं परिस्थितियों के आगे घुटने टेकने वाले नहीं अपितु आधुनिक युग की विरहिणी नारियों के समान जागरूक चुनौतियां स्वीकार करने वाले, त्याग भावना से पूर्ण एवं संघर्षों के साथ जूझने वाले हैं। वस्तुत: गुप्त जी के सामने नारी का व्यक्तित्व समन्वय का ही प्रतीक है। उन्हें नारी के व्यक्तित्व में यदि विरह-व्यथा से व्यथित विरहिणी की आंखों में निरन्तर बहती आंसुओं की धारा दिखाई पड़ती है तो ममतामयी मां के आंचल के नीचे दूध का आभास भी अवश्य होता है। स्पष्ट है कि गुप्त जी मां और नारी को अलग करके नहीं देखते हैं। उनका सर्जक कवि मां और विरहिणी नारी या पत्नी दोनों के समन्वित व्यक्तित्व का सृजन करने का ही पक्षधर है। दूसरे शब्दों में गुप्त जी नारी के मां रूप में पत्नी या विरहिणी पत्नी और पत्नी या विरहिणी पत्नी में मां रूप के ही दर्शन करते हैं। इसीलिए तो वह यशोधरा में कहते हैं:-

"अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी।
आंचल में है दूध और आंखों में पानी।"

उनके नारी पात्रों से विष्णु प्रिया, यशोधरा, उर्मिला जैसे नारी पात्र असह्य विरह जन्य वेदना से व्यथित होकर भी न तो टूटते हुए नजर आते हैं और न ही वे विपरीत परिस्थितियों के आगे घुटने ही टेकते हैं, चाहे उन्हें कितने भारी दु:ख ही झेलने की नौबत क्यों न आ जाए। उनके सामने तो कर्त्तव्यपालन के प्रति अटूट निष्ठा ही सर्वोपरि है। इसीलिए उनकी यशोधरा कहती है :-

"स्वामी मुझको मरने का भी दे न गये अधिकार।
छोड़ गये मुझ पर अपने उस राहुल का सब भार॥"

इस प्रकार गुप्त जी की यशोधरा असह्य विरह में तड़पती, विरहव्यंथा का असीम कष्ट

और ममता-मयी मां का कर्त्तव्य एक साथ ढोती हुई हमारे सामने नारी के समन्वित व्यक्तित्व का अद्‌भुत उदाहरण उपस्थित करती है।

परिणामत: उनका भावनाशील तथा लोकसंग्रही कवि निरन्तर वैषम्य में भी साम्य स्थापित करने का सतत प्रयास करता रहा, जिसमें उसे अपेक्षाकृत अधिक सफलता भी प्राप्त हुई। अपने इसी प्रयास में कवि गुप्त को धार्मिक, सांस्कृतिक तथा वैचारिक समन्वय स्थापित करने में अद्‌भुत सफलता प्राप्त हुई। राष्ट्रीय भावना से ओत-प्रोत उनके हृदय में लोकमंगल की सुरनदी निरन्तर बहती हुई विश्वमानवतावाद के भावजल से अपने पाठकों को सदा अवगाहित करती रहती है एवं इसीलिए वह उनके विशाल साहित्य सागर में अपने पाठकों को सदा आप्लावित करती रहती है और इसीलिए उनके विशाल साहित्य सागर में अठसठ से भी ऊपर अमूल्य रत्न भरे पड़े हैं, जिनमें धर्म, जाति, भाषा, देश, संस्कृति, मत-मतान्तर, वाद-विवाद, अतीत और वर्तमान, प्राचीन तथा नवीन सभी समन्वित होकर उसी प्रकार एकाकार हो गए हैं जैसे एक विशाल समुद्र में अनेकों नदियां मिलकर तदाकार हो जाती हैं।

कवि ने सभी मतों, सम्प्रदायों तथा धर्मों के प्रति अपना आदर व्यक्त करते हुए अपनी रचनाओं में उनके प्रति जो समन्वयवादी दृष्टिकोण अपनाया है उसमें उनका व्यक्तित्व तो शुद्ध पवित्र हुआ ही है अपितु कवित्व एवं कृतित्व भी कुन्दन बन गया है। उनकी यह उदाराशयता तथा धार्मिक सहिष्णुता ही है कि वह सभी धर्मो के प्रति समान आदर देते हैं। डॉ० कमला कान्त पाठक के साथ एक बार हुई बातचीत में उन्होंने सभी धर्मों तथा सम्प्रदाओं के प्रति अपनी उदार भावना तथा गहन निष्ठा का परिचय दिया था।[1] यही कारण है कि गुप्त जी की रचनाओं में राम[2], कृष्ण[3], बुद्ध[4], सिख गुरू[5], हजरत मुहम्मद[6], क्राईस्ट, जैन गुरू समान रूप से समादृत हैं। "काबा और कर्बला" की प्रस्तावना में सम्मिलित कवि के निम्न पद उनकी आसांप्रदायिक भावना तथा समन्वयवादी दृष्टिकोण का ज्वलन्त प्रमाण देते हैं :-

"उपदेशक जन जगत में, जितने हुए प्रमाण,
उन सबका उपदेश है, एक लोक-कल्याण।
जहां भेद है रीति में, नहीं नीति में भेद,
सदुपदेश है एक ही, क्या कुरान, क्या वेद?"[7]

---

1. *मैथिली शरण गुप्त व्यक्ति और काव्य, पृ-83*
2. *देखिए साकेत आदि*
3. *दे० जयद्रथवध आदि*
4. *दे० यशोधरा आदि*
5. *दे० गुरूकुल आदि*
6. *दे० काबा और कर्बला आदि*
7. *मैथिलीशरण गुप्त-व्यक्ति और काव्य, पृ०-84*

इसी प्रकार कवि ने एक बार जैन धर्म के प्रति अपनी आदर भावना व्यक्त करते हुए कहा था :-

"पंथ अनेक, संत सब एक, नत हूं मैं अपना सिर टेक,
जहां अहिंसा का अभिषेक, परम धर्म का वहीं विवेक ॥[1]

वस्तुत: कवि की धार्मिक-सहिष्णुता तथा समन्वयवादी विचारों के पीछे उनकी राष्ट्रीय एकता की भावना ही निहित है। कवि के ऐसे विचारों पर गांधीवाद का भी स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है। उनका नीचे उद्धृत यह पद इस तथ्य को उजागर करता है :-

"हिन्दू-मुसलमान दोनों अब छोड़ें वह विग्रह की नीति।"[2]
हिन्दू-मुसलमान सब भाई, निज नवीन जयगान।
वैष्णव, बौद्ध, जैन आदिक हम उस पर हिंसा करें कि प्यार॥
सत्याग्रह है कवच हमारा, कर देखे कोई भी वार।
हार मान कर शत्रु स्वयं ही यहां करेंगे मित्राचार॥[3]

इस प्रकार की समन्वयवादी भावना जिस कवि के व्यक्तित्व तथा कृतित्व दोनों में समान रूप से समाहित हो उसे भला कौन राष्ट्र-कवि के रूप में मानने से हिचकिचाएगा ?

विभिन्न धर्मों के प्रति समन्वयात्मक दृष्टिकोण रखने वाले गुप्त जी विभिन्न संस्कृतियों के प्रति भी समान रूप से आस्थावान् प्रतीत होते हैं। उनके अनुसार वैदिक, बौद्ध, जैन, इस्लामीयत, ईसाई मत आदि सभी संस्कृतियां समान रूप से सम्मानित होनी चाहिए। वह कहते हैं कि यदि संस्कृति कला को और कला संस्कृति को जन्म देती है तो फिर एक संस्कृति का दूसरी के साथ टकराव क्यों?

"संस्कृति जनती कला, कला संस्कृति को जनती।"

अत: निष्कर्ष निकलता है कि गुप्त जी हर क्षेत्र में शांति, सद्भाव तथा व्यवस्था के पोषक कवि होने के कारण समन्वयवादी भावना के अग्रदूत थे। उन्होंने सदा टकराव का विरोध और साम्यता का समर्थन किया। भारतीय तथा पश्चिमी संस्कृतियों के मध्य समन्वय का समर्थन करते हुए गुप्त जी निम्न पदों में सराहनीय विचार व्यक्त करते हैं :-

1. *मैथिलीशरण गुप्त - व्यक्ति और काव्य, पृ०-84*
2. *गुरूकुल उपोद्घात, पृ०-31*
3. *स्वदेश संगीत, गांधी गीत, पृ०-122.*

"पूर्व पश्चिम अब दूर नहीं, भाव क्या यह भरपूर नहीं?
स्वार्थ है जहां मिलन का हर्ष, वहीं भय-संशय-भय संघर्ष।"[1]
भारत माता के बच्चे, विश्व-बन्धु तुम हो सच्चे।[2]

अत: स्पष्ट है कि गांधी वाद से स्पष्ट रूप से प्रभावित कवि मैथिलीशरण गुप्त में आध्यात्मवाद, भौतिकवाद, व्यक्तिवाद तथा समाजवाद का अद्भुत समन्वय था जो विनोबाभावे के सर्वोदय आन्दोलन से भी कम प्रभावित नहीं था।

इस प्रकार की विशाल समन्वयवादी भावना के कारण ही कवि में धीरे-धीरे विश्वमानवता का लोकादर्श विकसित होता गया, जिससे मैथिलीशरण गुप्त उत्तरोत्तर विश्व कवि की भूमिका प्राप्त करते गए :-

"तुम प्रकाश से खिल जाओ,
अखिल विश्व में मिल जाओ।"

वस्तुत: कवि की व्यापक तथा उदार दृष्टि के सामने न किसी के प्रति विरोध है और न ही कोई वाद-विवाद तथा मत-मतान्तर है। स्पष्ट है कि उनकी रचनाओं में वह व्यापक जीवन दर्शन है जो विरोधों तथा वादों के झगड़ों से सर्वथा अछूता है। उनकी मान्यता है कि हम भले ही भिन्न-भिन्न हैं और हमारे आचार-विचार में भी भेद हो सकता है पर हमारे मन तो एक दूसरे को प्रेमदान देकर एक हो सकते हैं:-

"अनुदारता दर्शक हमारे दूर सब अविवेक हों,
जितने अधिक हों तन भले हैं, मन हमारे एक हों।
आचार में कुछ भेद हो, पर प्रेम हो व्यवहार में।
देखें, हमें फिर कौन सुख मिलता नहीं संसार में।[3]"

जैसा कि पीछे कहा जा चुका है कि कवि गुप्त जी को समन्वयवाद की भावना विरासत में कालिदास से लेकर गांधी तक अनेक कवि और संतों से प्राप्त हुई है, इस कथन की पुष्टि में विषय विस्तार के भय से केवल कालिदास के नाटक मालविकाग्नि मित्र का यह एक श्लोक उद्धृत करना पर्याप्त होगा :

1. *विश्व वेदना, पृ०-5*
2. *वैतानिक, पृ०-28 से 30।*
3. *भारत-भारती - पृ०-165*

''पुराणमित्येव न साधु सर्वं न चापि काव्यं नवमित्यवद्यम्।
सन्तः परीक्ष्यथन्यतरद भजन्ते मूढः परप्रेत्ययनेय बुद्धिः॥[1]''

इस श्लोक से समन्वयवादी भाव को कवि गुप्त भारत-भारती के एक पद में ज्यों का त्यों उतारते हैं :-

''प्राचीन हों कि नवीन छोड़ो रूढ़ियां जो हों बुरी,
बनकर विवेकी तुम दिखाओ हंस जैसी चातुरी।
प्राचीन बातें ही भली हैं यह विचार अलीक है,
जैसी अवस्था हो जहां वैसी अवस्था ठीक है।''[2]

यद्यपि गुप्त जी एक विचारक या तत्वज्ञ कवि नहीं है तो भी इस तथ्य से कदापि इन्कार नहीं किया जा सकता कि वह एक भावना-शील उदाराशयी तथा व्यापक दृष्टिकोण रखने वाले कवि नहीं है। गुप्त जी की मान्यता है कि मनुष्य में विचार-वैषम्य, वाद-विवादों तथा पृथकता की प्रवृत्ति भले ही स्वभाव सिद्ध हो परन्तु विश्व-मानवता की सांझी भाव-भूमि पर समता तथा मतैक्य का होना असम्भव नहीं है। उन्होंने जिन मानवीय मूल्यों का समन्वित रूप अपनी रचनाओं में संजोया उनमें सत्य, निष्ठा, शील, साधना, अहिंसक आचरण तथा प्रेमभाव सर्वोपरि हैं। उन्होंने सदा सादगी, सरलता, सात्विकता, सदाचरण, प्रेम, त्याग, करूणा, परमार्थ तथा पुरुषार्थ की भावना को अपनी रचनाओं में समन्वित रूप में अभिव्यञ्जित किया। परन्तु यह सब होने पर भी गुप्त जी का समन्वयवाद अन्धानुकरण पर आधारित नहीं है, अपितु पूर्णतया परिष्कृत है।

जब राजनैतिक क्षेत्र में साम्यवाद और साहित्यिक क्षेत्र में प्रगतिवाद ने जोर पकड़ा तो गुप्त जी ने इस विषय में भी अपने समन्वयवादी दृष्टिकोण का ही परिचय दिया। उनकी अन्यतम कृति ''जयिनी'' की पद कृति इस तथ्य की स्पष्ट घोषणा करती है :-

''मैं धनिकों को भावदान हूं, तुम दीनों की भाषा।
सत्य सभी सह सके तुम्हारा, यह मेरी अभिलाषा॥''

ऊपर दिये गये विवेचन के आधार पर हम निसंकोच कह सकते हैं कि गुप्त में धार्मिक समन्वय, सांस्कृतिक समन्वय, अतीत तथा वर्तमान का समन्वय, राष्ट्रीय विचार धाराओं का समन्वय, विश्व बन्धुत्व की पोषक भावनाओं का समन्वय आदि विविध प्रकार का समन्वयवादी दृष्टिकोण विद्यमान है, जिसके कारण उन्हें समन्वयवादी कवि मानना हर प्रकार से युक्ति संगत है।

सम्पर्क : 47/5 रूप नगर, हाऊसिंग कॉलोनी, जम्मू - 180 013

1. *मालविकाग्नि मित्र, प्रथम अंक, श्लोक-2*
2. *भारत-भारती, पृ०-160 भविष्यत् खण्ड*